

एक महायात्रा : भक्ति से प्रेम तक

सुभाष राय

निवास डी -1 /109 , विराज खंड, गोमतीनगर, लखनऊ
संपर्क -9455081894

अक्क महादेवी के वचनों में भक्ति का उल्लास है तो प्रेम का वैराट्य भी। वे किसी स्थापित दर्शन, सिद्धांत या विचार की भाषा नहीं बोलतीं, खुद अपनी भाषा गढ़ती हैं। अपने अनुभव को अपने ढंग से कहने का साहस करतीं हैं। उन्हें पढ़ते हुए लगता है कि वे अपनी दार्शनिक परंपरा को बखूबी जानती हैं, पारम्परिक भक्ति से भी परिचित दिखती हैं लेकिन जिन रास्तों पर हजारों पांवों के निशान हैं, जिन रास्तों पर लोगों के चलने से उड़ी धूल छाई हुई है, उन पर जाने और अपने लिए एक अगम्य बियाबान रचने की जगह वे नया रास्ता बनाती हैं। पहाड़, जंगल, नदियां, झरने जैसे उन्हें पथ देने की प्रतीक्षा में हों। धुंध छंटती जाती है, आसमान साफ होता जाता है और उनके पांवों के आगे पथ स्वयं निर्मित होता चला जाता है। वे अपने तरह की विरल अन्वेषक हैं। हमेशा वही लोग याद किये जाते हैं, जो नए रास्ते बनाते हैं। समय उन्हें गहरे अंधेरे में धकेल देता है जो बने-बनाये रास्तों पर चलते हैं। वे अनुयायी भर होते हैं, अन्वेषी नहीं। महादेवी अपने पुरखों को जानती थीं। वे समय-समय पर खोजे गए उन रास्तों को भी जानती थीं, जिन पर कोई अकेला गया लेकिन कालांतर में उसके अनुयायियों ने उसके नाम पर सिद्धांत और धर्मशास्त्र गढ़े, उसे सांस्थानिक जड़ता के रक्त-वस्त्र में लपेट दिया। महादेवी योग के बारे में, भक्ति के बारे में, तंत्र के बारे में पूर्ववर्ती शास्त्रकारों द्वारा गाई गयी विरुदावलियों के बारे में अपरिचित नहीं हैं। पता नहीं उन्होंने कब जाना होगा, इन सबके बारे में? सुनकर या पढ़कर? लेकिन जगह-जगह वे इनका जिस तरह उल्लेख करती हैं, उससे स्पष्ट है कि उन्हें उन पंथों के बारे में ठीक से पता था, जिनसे कभी महान लोग गए थे। वे जानती हैं कि 'महाजनो येन गताः स पन्था' पर शायद मानती नहीं। वे अपने लिए अलग रास्ता चुनती हैं। नहीं कह सकते कि वह ज्ञान का रास्ता था या भक्ति का, समर्पण का या प्रेम का। वहां भक्ति भी खड़ी मिलती है, ज्ञान भी, समर्पण भी और प्रेम भी। कह सकते हैं कि भक्ति और प्रेम साथ-साथ चलते हैं। यह भी कह सकते हैं कि बिना समर्पण के ये दोनों संभव नहीं और अंधे समर्पण से बात बनने वाली नहीं, इसलिए ज्ञानात्मक यानी विवेकसम्मत समर्पण जरूरी है। वे भक्ति के रास्ते चलते हुए भक्ति का और प्रेम के रास्ते चलते हुए प्रेम का भी अतिक्रमण कर जाती हैं। वे या तो खुद को मिटा देती हैं या ईश्वर को मिटा देती हैं। कभी वे शिव की देह में रहती हुई नजर आती हैं तो कभी शिव उनकी देह में रहता हुआ नजर आता है। इसी सन्दर्भ में वे 'शून्य' की चर्चा भी करती हैं। यह 'शून्य' पूर्वजों के 'शून्य' की तरह होते हुए भी उससे भिन्न है। यह अल्लम प्रभु, बसवण्णा और महादेवी की खोज है। अपनी इस खोज को वे अलग-अलग देश-काल में अलग-अलग ढंग से कहती हैं। सब कुछ कहते हुए वे आखिर में यह भी कहती हैं कि 'वे कुछ भी कह नहीं सकतीं।' पेड़ अपने बारे में कहाँ कुछ कहते, नदियां अपने बारे में कहाँ कोई कथा कहती हैं। वे बस प्रकृति की अनन्य सत्ता से एकमेक हैं। यही भक्ति और प्रेम में भी घटता है। जब कहने वाला और कहा जाने वाला एक हो गया, जब पहचानने वाला और पहचाना जाने वाला एक हो गया तब किसके बारे में कहे कौन। वे भले न कहें लेकिन हम कह सकते हैं कि उनकी अध्यात्म यात्रा की धुरी का केंद्र है प्रेम। इसी प्रेम के इर्द-गिर्द ज्ञान और भक्ति घूमते हैं। प्रेम निस्संदेह एक ऐसा मानवीय मूल्य है जो समूचे जीवन के केंद्र में है। व्यक्ति के जीवन से प्रेम ही अपना विस्तार करते हुए

समूची मनुष्यता से प्रेम में बदल जाता है, सबके लिए प्रेम में बदल जाता है। समूची सृष्टि से प्रेम, सारे जीव-जंतुओं से, सारे पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों से प्रेम, समूची धरती से प्रेम, ज्ञात और अज्ञात से प्रेम। हम जानते हैं कि आज की दुनिया की सारी समस्याएं इसी प्रेम के क्षीण होते जाने से पैदा हुई हैं। चाहे वह युद्ध हो, अशांति हो, प्रकृति का विनाश हो या निर्धनता, वंचना, दमन, अत्याचार हो, सभ्यताओं का संकट तभी बढ़ता है जब प्रेम कम होने लगता है। प्रेम देता है, मांगता नहीं, न छीनता है। प्रेम मदद करता है, किसी निरुपायता में नहीं धकेलता। प्रेम बांटता है, संग्रह नहीं करता। प्रेम सर्वोच्च बलिदान के लिए तैयार रहता है। 'शीश उतारे भुई धरे तब पैठे घर मांही।' प्रेम कोई सरहद स्वीकार नहीं करता, कोई बंधन कुबूल नहीं करता। प्रेम कम होने लगता है, जब लालच बढ़ने लगता है, जब कोई जरूरत से ज्यादा चाहने लगता है। महात्मा गांधी ने कहा था, 'धरती सबकी जरूरतें पूरा कर सकती है लेकिन एक आदमी का भी लालच नहीं।' हमारे लालच ने धरती का किस तरह चीर-हरण किया है, किसी से छिपा नहीं है। धरती के गर्भ का पानी घट रहा है, तापमान बढ़ रहा है। आशंकाएं जताई जा रही हैं कि अगला विश्वयुद्ध पानी के लिए लड़ा जायेगा। इसी लालच की सभ्यता के प्रहार से अनगिनत पशु, पक्षी विलुप्त हो गए हैं, ऋतुएं अपना अर्थ खो चुकी हैं। इसी लालच ने गरीब-अमीर के बीच संघर्ष का मार्ग प्रशस्त किया है। प्रेम ही एकमात्र रास्ता है। प्रेम ही है, जिसमें पाने की चाह नहीं होती, जिसमें नियंत्रित करने की लालसा नहीं होती। 'जिनको कुछ न चाहिए, वे साहन के साह।' आज सब उल्टा हो गया है। समय-रथ का पहिया वक्र घूम रहा है। जिनको सब कुछ चाहिए, जो सब कुछ पाने की ताकत रखते हों, वही साहन के साह हैं। प्रेम ही इस चक्र को पलट सकता है। प्रेम ने बार-बार इसे पलटा है। बुद्ध आये, महावीर आये, बसवण्णा आये, कबीर आये, गांधी आये। सबने प्रेम को ही महत्वपूर्ण माना, सबने प्रेम का ही रास्ता दिया। इसी प्रेम ने नयी समाज रचना की राह बनाई। यह प्रेम केवल प्रेम नहीं है, यही क्रांति है। व्यक्ति के जीवन में भी और समाज के जीवन में भी। यह प्रेम पोथी पढ़कर नहीं हासिल किया जा सकता। 'पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भय न कोया। ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होया।' इस प्रेम के लिए संतों ने समय-समय पर धार्मिक ग्रंथों, शास्त्रों द्वारा खड़ी की गयी शोषण और दमन की इमारतों को ढहा दिया, धर्म, जाति और संप्रदाय की दीवारों को ध्वस्त कर दिया। अक्क महादेवी भी दुनिया के नाम एक प्रेम पाती लिखती हैं। वे शिव के प्रेम में डूबी नहीं रहतीं, अपना शिवत्व जगा लेती हैं। शिव नहीं रहता, शिवत्व रहे जाता है। प्रेमी नहीं रहता, प्रेम रह जाता है। उनका रूपांतरण केवल एक व्यक्ति का रूपांतरण नहीं बल्कि समूची मानवता के रूपांतरण का बीज-रूप है। भक्ति मिले न मिले लेकिन इस दुनिया को अक्क महादेवी से उनका प्रेम पाना है। यह प्रेम मनुष्यता को एक नया अर्थ दे सकता है। अक्क महादेवी अपने पुरखों को ठीक से जानती हैं। वे भारतीय दर्शन, विचार और साधना पद्धतियों से भी पूरी तरह परिचित हैं। योग और तंत्र का भी उन्हें ज्ञान है। यह साधारण सुना-सुनाया ज्ञान भर नहीं लगता क्योंकि वे उनके अंतरंग को कहीं स्वीकार करती हैं तो कहीं अस्वीकार करती हैं। यह उन्हें विधिवत जाने बिना संभव नहीं। उन्हें शास्त्रों के निखालिस किताबी ज्ञान से कोई मतलब नहीं। वे बहुत साफ कहती हैं

कि वेद, शास्त्र, आगम, पुराण / ये सभी धान की भूसी की तरह हैं / टूटे हुए चावल की तरह / इन्हें और कूटने यानी इन्हें बार-बार खंगालने की क्या जरूरत / बस मन का सिर काट दो / और पूर्ण शून्य तक पहुँच जाओगे।

1. यह 'शून्य' ही सर्वोच्च सत्ता है लेकिन इसे इस तरह नहीं कहा जा सकता कि 'मैं जानता हूँ, मैं प्राप्त कर सकता हूँ या 'वह तुम हो' या 'वह मैं हूँ।' शंकराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र में कहा है कि 'मैं ब्रह्म हूँ, अहम् ब्रह्मास्मि या 'वह तुम हो', तत्त्वमसि महादेवी बिना नाम लिए वेदांत के इन महावाक्यों का खंडन करती हैं और कहती हैं कि ऐक्य की प्राप्ति के बाद यानी अपनी सत्ता के अनुभव के बाद 'मैं उसे कह नहीं सकती।' ². वे ज्यादा पढ़कर ज्ञान प्राप्त करने की जगह अनुभव को वरीयता देती हैं। एक अन्य वचन में वे अपना मतव्य और स्पष्ट करती हैं।

वेद को बार-बार पढ़ना गले की फांस बन गया है

शास्त्रों को बार-बार सुनने से संशय पैदा होते हैं

आगम ज्यादा ज्ञान का दावा करते हुए

विवेकहीनता की ओर ले जाते हैं

पुराण भी वही गलती दुहराते हैं

ओह ! 'मैं' क्या हूँ और 'वह' क्या है

ब्रह्म और कुछ नहीं बल्कि पूर्ण शून्य है। ³

कई स्थानों पर वे 'योगी' शब्द का भी इस्तेमाल करती हैं लेकिन पारम्परिक अर्थ में नहीं। वे कहती हैं, 'बहुत ध्यान करने से वह हासिल नहीं होता/ शब्दों की बाजीगरी से भी बात बनती नहीं / योगी वही हैं जो अपने हृदय में उसका अनुभव कर ले।' ⁴. उन्हें हठयोगियों की भाषा भी आती है लेकिन वे उसकी कायल नहीं हैं। वे कहती हैं कि वह 'नाद', 'बिंदु' और 'कला' से परे है। हठयोग में चक्रभेदन की विधि बताई गयी है, जिसके जरिये मूलाधार से कण्डलिनी को सहस्रार तक पहुँचाने की बात कही गयी है लेकिन अक्क महादेवी कहती हैं।

कोई आधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत,

विशुद्धि और आज्ञा चक्र की बात करता है तो क्या ?

कोई काल और कालातीत की बात करता है तो क्या ?

जब तक यह पता न हो कि वह 'एक' क्या है,

तब तक कोई साँस चढ़ाकर उसे हासिल नहीं कर सकता। ⁵

महादेवी वैदिक धर्म के 'माया' सिद्धांत की भी जगह-जगह चर्चा करती हैं और योगियों की जीवन पद्धति को प्रशंस्कित करती हैं। वे माया से डरती नहीं, 'अगर मैं माया को त्याग दूँ तो भी वह छोड़ने वाली नहीं / जब मैंने ऐसा किया, उसने मेरा पीछा किया / माया योगी के लिए योगिन बनी / अगर मैं तुम्हारी माया से डरू तो/ अभिशाप होगा मेरे लिए।' वे भक्ति शास्त्र से भी अनभिज्ञ नहीं हैं। उन्होंने कुछ समय योग भी किया होगा, ऐसे संकेत उनके वचनों में मिलते हैं। वे योगियों की तरह कम भोजन की बात करती हैं और कहती हैं कि 'ज्यादा खा लेने से नींद आती है, बीमारी आती है जो अज्ञान के अंधेरे की ओर ले जाती है, इससे देह, मन और हृदय में विकार पैदा होते हैं, वायु का दबाव बढ़ता है। ज्यादा मत खाओ, यह ध्यान,

तपस्या और विराग में बाधा पैदा करेगा, अन्य की भावना बढ़ाएगा, लक्ष्य के प्रति सजगता कम करेगा और अंततः मृत्यु की ओर ले जायेगा। देह को नष्ट मत करो।' वे समाधि में प्रवेश करने की बात भी करती हैं। ⁶. भक्ति के तीन रूपों 'सामीप्य', 'सारूप्य', और 'सायुज्य' का उल्लेख करते हुए वे अगस्त्य, कश्यप और जमदग्नि जैसे अपने पूर्वजों का स्मरण करती हैं और कहती हैं कि इसी रास्ते पर चलकर वे मृत्यु के भय को जीत सके थे। इसी अर्थ में वे सम्मानपूर्वक वाण और कार्लिदास का भी स्मरण करती हैं। ⁷.

तंत्र साहित्य की शब्दावली भी उनके वचनों में लक्षित की जा सकती है। 'वामदेव', 'अधोर', 'तत्पुरुष' और 'ईशान' जैसे देवताओं को उन्होंने वहीं से उठाया होगा। वैसे उनके समय में शैव तांत्रिकों का भी काफी प्रभाव था।

ऐसे लोगों के संपर्क में भी वे रही हो सकती हैं। वीरशैव दर्शन का धर्मशास्त्र रचने में भी उनके योगदान की बात कही जाती है लेकिन वे परम स्वाधीन संत की तरह किसी भी शास्त्रधर्मिता को कर्मकांड मानकर अस्वीकार कर देती हैं और अपने 'परम दैन्य' के साथ शिव के समक्ष हाजिर होती हैं। यहाँ तक कि स्वयं को भक्त मानने को भी एक

अहमन्यता की तरह विसर्जित कर देती हैं, 'मैं भक्त नहीं हूँ क्योंकि मुझे नहीं मालूम / कि मालिक की सेवा कैसे की जाती है / मैं महेश्वर नहीं हूँ क्योंकि मुझे व्रत, कर्मकांड नहीं आता / मैं शरण नहीं हूँ क्योंकि मुझे लिंग पति हैं और शरण सती / यह बात समझ में नहीं आती। इसी वचन में वे कहती हैं कि मैं 'षडस्थल' में किसी स्थल पर नहीं हूँ। ⁸. दरअसल 'षडस्थल' वीरशैवों की भक्ति का सिद्धांत है। भक्ति के लिए छह सीढ़ियाँ बनाई गयी हैं और उन पर उत्तरोत्तर चढ़ने की प्रक्रियाएँ बताई गयी हैं। अंतिम उपलब्धि है 'शून्या' ऐसे में जिसने बिना इन सीढ़ियों के ही 'शून्या'

को जान लिया है, वह साधना में नहीं है, न ही उसे साधना की आवश्यकता है। वे बहुत तर्कसम्मत तरीके से साधना के प्रचलित रूपों की निरर्थकता प्रमाणित करती हैं।

क्या मैं अष्ट-मार्ग की पूजा से

तुम्हें प्रसन्न कर सकती हूँ,

तुम बाह्याचारों से परे हो

क्या मैं हृदय में ध्यान से

तुम्हें प्रसन्न कर सकती हूँ

तुम मन की सीमा से परे हो

क्या मैं माला फेरकर और भजन गाकर

तुम्हें प्रसन्न कर सकती हूँ

तुम वाणी की पहुँच से परे हो

क्या मैं तुम्हें ज्ञान से प्रसन्न कर सकती हूँ

तुम किसी तर्क बुद्धि से परे हो

क्या मैं तुम्हें अपने हृदय-कमल में रख सकती हूँ

तुम मेरी समूची देह में भरे हुए हो

तुम्हें प्रसन्न करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है

तुम्हारा आशीष ही मेरा आनंद है। ⁹

असमर्थता का यह बोध ही उन्हें भक्ति और प्रेम की तरफ ले जाता है। अक्क महादेवी किसी भी शास्त्रीय व्यवस्था या सिद्धांत की घेरेबंदी से परे खड़ी नजर आती हैं। इस तरह वे किसी परंपरा, धर्मशास्त्र या किताब के बंधन में नहीं बंधती, किसी सिद्धांत या दर्शन को जैविक शक्ति की तरह नहीं अपनाती। भक्ति और प्रेम साथ-साथ चल सकते हैं। बिना प्रेम के भक्ति संभव नहीं है। भक्त प्रेमी हो सकता है और प्रेमी भक्त। कबीर की भक्ति पर विचार करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, 'भक्ति के लिए केवल एक ही बात आवश्यक है-अनन्य भाव से भगवान की शरणागति, अहैतुक प्रेम, बिना शर्त आत्मसमर्पण।' ¹⁰. भक्त भगवान को किसी भी रूप में देख सकता है। पिता के रूप में, सखा के रूप में, गुरु के रूप में। प्रेमी के लिए भी यह छूट है लेकिन प्रेम जब साधना के रूप में हो तब भक्त को प्रियतमा का, स्त्री का रूप धारण करना पड़ता है। महादेवी प्रेम का रास्ता पकड़ती हैं, लेकिन यह भक्ति से होकर निकलता है। इसीलिये वे अपने प्रिय को प्रारंभिक चरण में 'पिता' कहकर सम्बोधित करती हैं, खुद को 'दासी', 'नौकरानी' मानकर आगे बढ़ती हैं। वे स्वयं को भगवान का प्यारा बच्चा कहती हैं। ¹¹. वे भीतर के भयानक जंगल को पार कर जब अपने प्रभु के पास पहुँचती हैं तो वह उन्हें गले लगाता हुआ कहता है, 'बेटी, तुम संसार को जीतती हुई यहाँ आयी हो।' वे भगवान का गुलाम बनने, दास और नौकर बनने में भी संकोच नहीं करती। जाहिर है नौकर मालिक

के सबसे पास रहता है और उसे उसकी सेवा का पूरा अवसर मिलता है। एक वचन में वे कहती हैं, 'मुझे गले लगा लीजिये / अपना चेहरा दिखा दीजिये / बाहर मत खड़ेडिये / मैं पूरी तरह समर्पित नौकर हूँ / मुझे बाहर मत भगाइये / विश्वास कर आप के पीछे आयी हूँ / जल्दी से मुझे अपने हृदय में रहने की जगह दीजियो' ¹².

इन वचनों से ऐसे स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि अपने शुरुआती समय में महादेवी ने भक्ति का ही रास्ता अपनाया। उसी के जरिये वे इतनी ऊंचाई पर पहुँच गयी कि शिव से प्रिय-प्रियतमा का रिश्ता बनाना सहज हो गया। गुरु दीक्षा अक्सर ज्ञान या भक्ति मार्ग में होती है। अक्क महादेवी को बचपन में ही गुरु से दीक्षा मिली थी। प्रेम का मार्ग सहज है, उसकी दीक्षा का कोई उदाहरण नहीं मिलता। इससे भी लगता है कि महादेवी के आध्यात्मिक जीवन की शुरुआत एक भक्त की तरह हुई थी। उनके यहाँ भक्ति की गहन संवेदना विद्यमान है। यह कोई मामूली चीज नहीं है। यहाँ आडम्बर से काम नहीं चलता। यहाँ लालसा और कामना के लिए कोई जगह नहीं। समर्पण से कम कुछ भी भक्ति के मार्ग में काम नहीं आता। उन्हें उन भक्तों की तलाश है, जो खुद को समर्पित करके संतुष्ट हैं। ऐसे भक्तों का वे स्वागत करने को तैयार हैं। स्वागत भी ऐसा-वैसा नहीं। कहती हैं, 'उनके लिए हरी पत्तियों से, गुब्बारों से अपना घर सजाऊँगी, ताज पहनूँगी और जब आप के भक्त मेरे घर आयेंगे, मैं अपना हृदय खोलकर उनके पवित्र चरणों को उसमें रोप दूँगी।' ¹³ यानी वे सोचती हैं कि कोई सच्चा भक्त एक बार उनके यहाँ आ गया तो उसे खुद से बिछुड़ने नहीं देंगी। भक्ति मार्ग में जीत उन्हीं की है, जिन्हें समर्पण आ गया। दीनता के बिना समर्पण संभव नहीं। जब यह भाव मन में आ जाय कि अब बचाने वाला, राह दिखाने वाला कोई नहीं। बस एक ही है, भगवान ही है, तब समर्पण घटता है। यह दैन्य महादेवी के एक वचन में देखा जा सकता है, 'मेरी प्रार्थना सुनो / कृपा कर मेरी प्रार्थना सुनो / मेरी प्रार्थना स्वीकार करो / तुम मेरा रुदन क्यों नहीं सुनते / तुम्हारे सिवा मेरा कोई नहीं है / सुनो मेरी प्रार्थना।' और भक्ति के चरम पर जब उनकी प्रार्थना सुन ली जाती है, वे स्वयं को 'विश्वरूप' महसूस करती हैं।

भक्ति में भी विवेक की जरूरत होती है। 'रीजन' के बिना भटक जाने का खतरा बना रहता है। नीर-क्षीर विवेक, अकाट्य सजगता। यह अक्क महादेवी में हमेशा दिखता है।

अगर मैं कहूँ कि मेरी नजर ठीक है
और अँधेरे में दाखिल हो जाऊँ तो क्या होगा
तुमसे मिली कृपा को नजरअंदाज कर
मैं कुछ और चाहूँ तो क्या होगा
संकीर्ण लोगों के साथ रहकर मैं
महानता पाने की सोचूँ तो क्या होगा? ¹⁴

महादेवी भक्तों के लक्षण भी बताती हैं, भक्त होने के लिए क्या जरूरी है, यह भी समझाती हैं, 'उसे जाति का अभिमान नहीं है / क्योंकि वह किसी स्त्री की कोख से नहीं जन्मा / उसे किसी संकल्प का अभिमान नहीं है / क्योंकि उसका कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं है / उसे किसी संपत्ति का अभिमान नहीं है / क्योंकि वह वासनाओं से मुक्त है / उसे किसी विद्वत्ता का अभिमान नहीं है / क्योंकि उसने असंभव को प्राप्त कर लिया है / चूँकि उसे तुमने अपना बना लिया है / वह बिना देह के रहता है / इसलिए हे चेन्न / तुम्हारे भक्तों को कोई अभिमान नहीं है।' वीरशैव मानते हैं कि दीक्षा के साथ ही भक्त का जन्म होता है। इसी अर्थ में महादेवी भक्त के लिए कहती हैं कि वह स्त्री के गर्भ से नहीं जन्मा है। भक्त का सबसे प्रमुख लक्षण है कि वह बाहर-भीतर से एक जैसा रहता है क्योंकि उसने अज्ञान के अन्धकार को जीत लिया है। वे ज्ञान और भक्ति का फर्क भी बताती हैं लेकिन दोनों को एक-दूसरे का पूरक बताती हैं। ज्ञान अगर सूर्य है तो

भक्ति उसकी रश्मियाँ। सूर्य के बिना रश्मियों की और रश्मियों के बिना सूर्य की कल्पना संभव नहीं है। इसी तरह भक्ति के बिना ज्ञान का और ज्ञान के बिना भक्ति का कोई मूल्य नहीं है। जब कोई सर्वोच्च सत्ता के प्रकाश को, उसके महत्त्व को, उसके वैराट्य को समझ लेता है, तभी उसके भीतर उसके पास होने, उसकी तरह होने या उससे एकमेक होने की भावना बलवती होती है, इसलिए भक्त के लिए ज्ञान की महत्ता असंदिग्ध है। भक्त के नाते ही वे आडम्बर, पाखंडप्रियता, लोभ-मोह के छद्म और किसी भी प्रकार की श्रेष्ठता के दर्प का खंडन भी करती हैं। यह अदम्य भक्ति ही महादेवी को प्रेम की यात्रा में ले जाती है और प्रेम उनकी जीवन-यात्रा का नाभिक बन जाता है।

प्रेम की जितनी गहन, सुन्दर, अप्रतिम और बहुविध अभिव्यक्तियाँ अक्क महादेवी के यहाँ हैं, शायद ही किसी काल की भक्ति कविता में हो। प्रेम 'सब कुछ' से 'कुछ नहीं' में बदल जाने का नाम है, 'संसार' से 'शून्य' तक की यात्रा है। प्रेमी मिट जाना चाहता है, खुद को मिटाकर अपने प्रियतम को अपने भीतर जिन्दा रखना चाहता है। अधिकांश भक्ति कविता में प्रेम एक 'मरण उत्सव' की तरह उपस्थित है। कबीर कहते हैं, 'जिस मरनें जग डरे, सो मेरे आनंद / कब मरिहूँ कब देखहूँ पूरण परमानंद।' हजारी प्रसाद द्विवेदी इस मृत्यु कामना पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं, 'मृत्यु? मरना भी कोई चाहेगा? पर भक्त मरना चाहता है, आत्महत्या नहीं। सांसारिक विषयी व्यक्ति आत्महत्या करते हैं। मृत्यु तो संग्राम में होती है, जौहर से होती है-जहाँ मरने वाला अपने को बलिदान कर देता है। जो अपने को बलिदान नहीं करता, वह रोग-शोक का शिकार हो जाता है। उसकी मृत्यु परवश-मृत्यु है या आत्मघात है। पर जो प्रतिक्षण अपने को उत्सर्ग कर सका है, जो सदा सिर हथेली पर लिये है, वह जीता भी है तो मृत्यु का वरण करके अपना आप ही तो सीमा है, बंधन है, भय है। उसको त्याग देना और बलिदान कर देना ही मृत्यु है। सो, कबीरदास इसी मृत्यु को वरण करने की सलाह देते हैं। मरके मरना तो कोई मरना नहीं हुआ, क्यों न जीते ही मरा जाए? अपने-आप को उत्सर्ग कर देना ही जीते हुए मर जाना है, 'हौं तोहि पूछौं हे सखी, जीवत क्यों न मराई / मुँवा पीछे सत करै, जीवत क्यों न कराई।' ¹⁵ यह कबीर के प्रेम का आदर्श है। अगर कहा जाय कि कबीर से बहुत पहले यह अक्क महादेवी के जीवन का आदर्श था, तो कोई गलती नहीं होगी। वे अपने वचनों में बार-बार खुद को मिटा देने की बात करती हैं, सम्पूर्ण उत्सर्ग का संकल्प जताती हैं, जताती ही नहीं कर डालती हैं।

जब मेरे गुरु ने मेरी हथेली पर लिंग की तलवार रखी
मैं लड़ी और मैंने काम को जीत लिया
क्रोध सहित सारे दुश्मन मारे गए
लालसाएं भाग खड़ी हुईं
क्योंकि तलवार मेरे भीतर घुस गयी
और मैं खत्म हो गयी। ¹⁶

यह प्रेम अनहद है। महादेवी अपने प्रियतम के हाथों मरने को तैयार हैं, 'क्या चन्दन काटे और घिसे जाने के कारण अपनी सुगंध छोड़ देता है / क्या सोना काटे और तपाये जाने पर अपनी चमक त्याग देता है / क्या गन्ना काटे जाने, पेरे जाने और गुड़ बनाने के लिए गर्म किये जाने की पीड़ा के चलते अपनी मिठास छोड़ देता है / अगर तुम मेरे बीते दिनों के सारे पाप इकट्ठा करो और मेरे मुँह पर दे मारो तो नुकसान तुम्हारा ही होगा / तुम मुझे मार भी डालो तो भी मैं यह कहना कभी नहीं छोड़ूँगी कि मैं तुम्हारे आगे प्रणत हूँ।' वे अपने प्रियतम को एक सुन्दर चित्र बिम्ब से समझाती हैं, 'जैसे एक हाथी चमकते पत्थर में अपनी छाया देखकर / उससे लड़ते हुए मारा जाता है / वैसे ही मैं भी अपनी छाया से लड़ रही हूँ / अंत भी वैसा ही होना है / हाथी जिससे लड़ता है / वह हाथी है फिर

भी हाथी नहीं है / जब तुम मेरी हथेली पर हो तो/ यह 'मैं' और 'तुम' का भ्रम क्यों है / मैं कुछ नहीं बल्कि तुम ही हो।' वे खुद को मिटा देती हैं और देह में होते हुए भी देह में नहीं होती हैं। वहां उनका प्रियतम होता है। यहाँ फिर कबीर याद आते हैं, 'जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं / प्रेम गली अति सांकरि, जा में दो न समाहिं।' प्रेम में एक को तो मिटना ही पड़ता है। जो अक्षर है, वह कैसे मिटेगा। इसीलिये प्रेमी भक्त को ही मरने का रास्ता चुनना पड़ता है। अक्क महादेवी जब खुद को मिटाती है, जब अपने लिए जीते-जी मृत्यु चुनती हैं तो वे रहकर भी नहीं रहतीं, उनके शरीर में चेन्न मल्लिकार्जुन यानी उनका प्रियतम रहने लगता है। धीरे-धीरे वह इस देह पर कब्जा जमाता है। महादेवी देह, मन और हृदय को मिटाकर प्रियतम के हृदय में प्रविष्ट हो जाती हैं, उसी में समा जाती हैं। वे

खूबसूरत ढंग से इसका बयान करती हैं।

जब मेरी देह ने तुम्हारा रूप धरा

जिसकी मैं सेवा करती हूँ

जब मेरा मन तुम्हारे स्मरण से भर गया

जिसकी मैं प्रार्थना करती हूँ

जब मेरी साँसें तुम्हारी साँसों से मिल गयी

जिसकी मैं आराधना करती हूँ

जब मेरी चेतना तुम्हारी चेतना में विलीन हो गयी

मैं और किसे जान सकती हूँ

चूँकि तुमने ही तुम्हारे जरिये यह रचा है

तुम्हारे जरिये ही तुम्हें जान पायी हूँ।¹⁷

प्रेम में स्वप्न का बहुत महत्त्व है। यह एक फैटेसी की तरह है। पहले प्रेम स्वप्न में घटता है और फिर जीवन में। वे एक भिखारी को सपने में देखती हैं, जो कुछ मांगने घर आया है। वे उसके पीछे भागती हैं। वह उनकी पहुँच से बाहर है। वे उसकी ओर हाथ बढ़ाती हैं और तभी उनका प्रियतम चेन्न मल्लिकार्जुन दिखाई पड़ता है। उनकी नींद टूट जाती है। उनके स्वप्न कई बार कल्पनाओं में बदल जाते हैं। वे जागते हुए भी प्रिय से मिलन की कल्पनाएँ करती हैं। इस तरह वे अपना एक अद्भुत संसार रच देती हैं। कहती हैं, 'हे, पुरुष श्रेष्ठ आओ। तुम्हारे आने से ही मेरी सांस लौटेगी। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ। आशा है तुम आओगे। आकलता में मेरा मुँह सूख रहा है।' 18. उनकी कल्पना इससे आगे तक पहुँचती है। वे सोचती हैं कि अगर गुरु उनके घर आ गया तो कैसे उसका स्वागत करेंगी। गुरु ने ही तो प्रियतम तक पहुँचने का मार्ग दिखाया है। अत्यंत सुंदर शब्दों का प्रयोग करते हुए वे कहती हैं।

अगर मेरा गुरु आज घर आया

तो मैं आँखों से बरसे जल को अपने

देह-घट में भरकर उससे उसके पाँव धोऊँगी

उसके शरीर पर परम शांति का शीतल इत्र लगा दूँगी

हृदय-कमल से उसकी पूजा करूँगी

और शिवलोर का पावन दीप जलाकर

परम संतोष का भोजन परोसूँगी

तृप्ति का पान खिलाऊँगी

पांचब्रह्म के पांच संगीत वाद्य बजाऊँगी

उसे प्रसन्नता से देखूँगी और आनंद से नाचूँगी

उनके चरणों में पानी की तरह पिघल जाऊँगी।¹⁹

फिर भी समस्या यह है कि जब तक संसार है, यह सपना, यह कल्पना कैसे सच होगी। संसार को, यानी वासनाओं को, लालसाओं को तो मिटाना होगा। महादेवी के हाथ में 'शिवशरण' की तलवार है। एक ऐसी तलवार जो टूट नहीं सकती। वे संकल्प जताती हैं कि मैं वासनाओं को जिन्दा नहीं जाने दूँगी। उन्हें मारकर मैं अपने प्रियतम को खुश कर दूँगी।

उनके प्रेम में गलदश्रु भावुकता, स्वेद, कम्प नहीं दिखता लेकिन एक गहरी पुकार जरूर सुनायी पड़ती है। यह समर्पण की पुकार है, एकतरफा है क्योंकि प्रेम में कोई शर्त नहीं होती। यह समर्पण की इन्तहा है, अपने प्रियतम को प्रेम से भी मुक्त कर देने जैसी बात है। उन्होंने स्वयं को पूरी तरह अपने प्रियतम पर छोड़ दिया है, वह जैसा चाहे करे। उन्हें कुछ नहीं चाहिए, वे केवल प्रेम करेंगी, 'मेरी पुकार सुन सको तो सुनो / न सुन सको तो मत सुनो / मेरी वेदना महसूस कर सको तो करो/ नहीं कर सको तो मत करो / तुम पर कोई बंधन नहीं / अगर तुम इंकार कर दो तो मैं तुम्हारा प्रेम कैसे हासिल कर पाऊँगी / जब मेरा पुकारता हृदय तुममें विलीन हो जायेगा / तो मुझे कैसे अपनाओगे।'²⁰

अक्क महादेवी का समर्पण उनके प्रेम को और प्रगाढ़ बना देता है। वे कण-कण में अपने प्रिय को महसूस तो करती हैं लेकिन वह सामने नहीं आता। वे मधुमक्खियों के झुंड से, आम के पेड़ों से, चन्द्रमा की किरणों से, कोयल से करुण निवेदन करती हैं, अगर संयोगवश भी वह तुम्हें दिखाई पड़ जाय तो मुझे आवाज देना, उसे मेरे बारे में बता देना। वे प्रेम के समर में एक बहादुर योद्धा की तरह आगे बढ़ती हैं। अब पीछे लौटना संभव नहीं। प्रिय उनकी बात सुने, न सुने, उन्हें प्रेम करे, न करे। वह किसी और से प्रेम करे तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। वे जानती हैं कि उन्होंने जो रास्ता चुना है, वह बहुत आसान नहीं है। बहुत कंटकाकीर्ण है। प्रियतम भी बहुत सरलता से गले लगाने वाला नहीं है। वे अपने लिए कष्ट, दुख, वेदना, पीड़ा आमंत्रित करती हैं। जितना दुख आएगा, उतना ही प्रिय के करीब पहुँचती जाऊँगी। वे अपने प्रियतम से निवेदन करती हैं कि जितना दर्द दे सकते हो दो ताकि मन पर कोई मैल, कोई दाग न रह जाय। महादेवी की प्रेम वेदना उनके भीतर अतीन्द्रिय यौनिक संवेदना जगा देती है। वे प्रसाद में ही सम्भोग का आनंद अनुभव करती हैं। 'मेरा जीवन तुम्हारा प्रसाद है। मेरी आत्मा तुम्हारा प्रसाद है। मैं प्रसाद बिछाती हूँ और वही ओढ़ती हूँ। तुम्हारा प्रसाद ही मेरे लिए सम्भोग का आनंद है।' 21. वे खूबसूरत देह बिम्ब के साथ अपने वचन में उपस्थित होती हैं और शिव को पुकारते हुए ऐसे बंधन में बंधना चाहती हैं, जिसके कोई निशान न रह जाय। तड़प का एक आकर्षक बिम्ब उनकी कविता में उभरता है। वे द्वंद्व और द्वैत से उपजी लाज-शर्म से मुक्त होकर अपने उन्नत स्तनों को अपने प्रियतम के सीने पर कुचल देना चाहती हैं।

हे शिवा ! कब मैं अपने

इन घट-स्तनों से तुम्हें कुचल पाऊँगी

कब मैं मन के शील और देह की शर्म से

मुक्त होकर तुमसे मिल पाऊँगी।²²

पीड़ा बढ़ती जाती है और यहीं पीड़ा उन्हें उत्तम प्रेम के विराट अनुभव तक ले जाती है। वे कहती हैं, 'तुम्हें जान लेने के बाद नर्क में रहना मुक्ति है / तुम्हें जाने बिना मुक्ति भी नर्क के सामान है / आनंद जो तुम नहीं चाहते, दुख है / और दुख जो तुम्हें पसंद है / महत्तम आनंद है।' इसी रास्ते वे प्रेम के शिखर का स्पर्श कर लेती हैं। एक वचन में वे इसका बयान करते हुए जो बिम्ब रचती हैं, वह अतुलनीय है। वे कहती हैं, 'चेन्न मल्लिकार्जुन ने प्रेम की जो तलवार मेरी देह में घुसेड़ी है, वह भीतर घुस कर टूट गयी है। जैसे कोई बाँझ स्त्री प्रसव की वेदना नहीं समझ सकती, सौतेली माँ पुत्र-स्नेह नहीं समझ सकती / वैसे ही जिसने दर्द नहीं सहा है / वह नहीं समझ सकता कि दर्द क्या है।' 23. दर्द का इंतहा ही दवा हो जाना है। उन्हें भी अंततः इस दर्द की मदद से ही मिलन संभव हो पाता है। वे जीवन और जगत के सारे व्यवहार को अलविदा कहकर अपने प्रियतम के घर की ओर रवाना हो जाती हैं। द्वैत को जीत लेती हैं। मैं और वह का भेद मिट जाता है। अक्क महादेवी मर कर अपने प्रियतम के भीतर जीवित हो उठती हैं। प्रिय से मिलन ही

है। अपनी इस मृत्यु का वे बहुत सुंदर वर्णन करती हैं।
जीवन का अध्याय बंद हो गया
चेन्न मल्लिकार्जुन पर भरोसा कर
मैंने जीने की चाह छोड़ दी।²⁴

महादेवी के प्रेम में अद्वितीयता है, साहस है। शिव को प्रियतम बनाने और उन्हें पति के रूप में हासिल करने का संकल्प कोई मामूली संकल्प नहीं है। बड़े लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बड़े त्याग की, बड़े साहस की जरूरत होती है, अनन्यता और अखंड विश्वास की जरूरत होती है। विराट का स्वप्न, विराट की कल्पना सहज है लेकिन उस स्वप्न को हासिल कर लेना असाधारण बात है। एक रूप में है, दूसरा अरूप, अव्यक्त है, एक सीमा में है, दूसरा असीम, अनहद है, एक गुणाश्रित है, दूसरा गुणों से परे है। दोनों का प्रेम असंभव है, जिसे अक्क महादेवी ने संभवे किया। इस प्रेम के लिए उन्होंने खुद को मांजा, साफ किया। भीतर के संसार को मार दिया। सारी इच्छाओं से मुक्ति पायी और इस तरह अनन्यता के महालोक में दाखिल हुईं। यहीं वे ऐसे रंग में रंग जाने की बात करती हैं, जो कभी उतरता नहीं। उनका प्रेम अनासक्त प्रेम था। भले वह प्रियतम को पाने की चाह से शुरू हुआ हो, लेकिन अक्क महादेवी ने बाद में इस चाह से भी मुक्ति पा ली।

जब वह अपने प्रियतम से मिलन की कामना से भी मुक्त हो जाती हैं, शिव उनका दरवाजा खटखटाने आ जाता है। महादेवी का प्रेम भक्ति कविता में अन्यतम है क्योंकि यहाँ प्रिया प्रियतम से एक ही नहीं होती, वह प्रियतम की सत्ता में और प्रियतम उसकी सत्ता में रूपांतरित हो जाता है। जहाँ एक तरफ वह कहती हैं कि शिव से मिलकर वे मर गयीं, वहीं वे यह भी कहने से नहीं चूकतीं कि उनके मर जाने पर शिव भी आखिर कैसे जीवित रह सकता है। यह प्रेम में द्वैत का मिट जाना है लेकिन यह एकतरफा होते हुए भी एकतरफा नहीं रहता। इस तरह वे सब कुछ खोकर सब कुछ पा लेती हैं। अक्क महादेवी भक्ति और प्रेम का ऐसा ताना-बाना बुनती हैं, जिसके भविष्य में भी अनेक पाठ-पुनर्पाठ किये जाते रहेंगे, जो अपने कथ्य, अपनी संवेदना और अपनी अद्वितीयता के आलोक से भावी पीढ़ियों के भीतर नया उजाला पैदा करता रहेगा।

छायावादी काव्य जगत में श्री सुमित्रा नन्दन पंत का स्थान

षीना.वी.के

सह आचार्या हिन्दी विभाग
सरकारी ब्राण्डन कॉलेज तलशेशरी

सारांश ----इस लेख में छायावादीकवि सुमित्रा नंदन पंत के परिचय दिए हैं। उनकी छायावादी रचनाओं की विशेषताएं कतिपय उदाहरण सहित प्रस्तुत करके विश्लेषण किये हैं।

बीजवाक्य- हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की छायावादी कविता के महत्वपूर्ण कवि हैं सुमित्रा नंदन पंत। उनकी छायावादी कविताएं हिंदी साहित्य जगत में लोकप्रिय हैं। इसके उद्घाटन करना लेख के उद्देश्य है।

हिन्दी साहित्य की मुख्यतः दो विधाएँ हैं। वे हैं पद्य साहित्य और गद्य साहित्य। पद्य साहित्य हिन्दी साहित्य की एक समृद्ध विधा है। अध्ययन की सुविधा के लिए हिन्दी कविता विधा को विभिन्न युगों में बाँटा गया है। वे हैं भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद युग, प्रगतिवाद युग, प्रयोगवाद युग, और नयी कविता का युग आदि। हिन्दी काव्यधारा के विकास में छायावादी युग का अपना महत्व है। प्रकृति के विभिन्न तत्वों का परस्पर निवेदन ही छायावाद है। हिन्दी छायावादी काव्य के प्रमुख कविगण हैं - जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, और महादेवी वर्मा। हिन्दी में छायावाद संबन्धी आलोचनात्मक लेखन मुकुटधर पाण्डेय द्वारा प्रस्तुत हुआ था। छायावाद के प्रमुख कवियों में एक थे सुमित्रानन्दन पंत जिन्होंने छायावादी काव्य साहित्य को अत्यंत समृद्ध किया। श्री सुमित्रानन्दन पंत का जन्म 20 मई सन् 1900 ई. में अलमोडा जिले के कौसानी नामक गाँव में हुआ था। यह स्थान अपनी प्राकृतिक शोभा के लिए अत्यंत प्रसिद्ध है। प्रकृति के प्रति श्री पंतजी का अनुराग इसी नैसर्गिक एवं प्राकृतिक सौंदर्य के कारण है। प्रकृति उनके लिए सबकुछ थी। पंतजी प्रकृति का चितेरा हैं। उनकी प्रमुख काव्यकृतियाँ हैं - वीणा, प्रार्थि, पल्लव, गुँजन, ज्योत्सना, युगांत, युगवाणी, प्राप्या, स्वर्ग किरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा, रजत शिखर शिल्पी, सैवर्ण, अदिमा, वाणी, कला और बूढ़ा चाँद, लोकायतेन आदि। श्री पंतजी की काव्यकृतियाँ, उनके मानसिक विकास की श्रृंखलाएँ हैं। इनके अन्य काव्यसंग्रह हैं पललविनी, आधुनिक कवि भाग - दो, चिदंबरा, रश्मिबंध, और तारापथा पंतजी का प्रकृतिप्रेम अत्यंत चर्चित है। उनकी छायावादी रचनाओं में उनका सहज प्रकृति प्रेम देख सकते हैं।

श्री पंतजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। वे एक परिवर्तनशील और प्रगतिशील कवि रहे हैं। उन्हें हिन्दी काव्य साहित्य के किसी वाद की सीमा में रखना कठिन कार्य ही है। श्री सुमित्रानन्दन पंत की प्रारंभकालीन रचनाएँ उनके छायावादी काव्य के अंतर्गत आती हैं। 1918 में उनकी प्रथम रचना वीणा प्रकाशित हुई और इस रचना के द्वारा वे काव्यजगत में आए